अंतर्राष्ट्रीय

खाड़ी युद्ध समाप्त : इराक गृहयुद्ध की चपेट में

और आखिरकार सद्दाम हुसैन ने घुटने टेक दिये और इराक एकदम से नेस्तनाबूद होने से बच गया। इससे तत्काल तो सिर्फ इतना हुआ कि युद्ध रुक गया और अमरीका की शान बरकरार रह गयी, लेकिन खाड़ी का संकट पहले से ज्यादा भीषण होता जा रहा है। अमरीकी राष्ट्रपति जॉर्ज बुश इराकी राष्ट्रपति सद्दाम हुसैन का भले ही जीना मुहाल कर दें लेकिन इराक में मित्र देशों की सेनाओं ने जो बेहतहा बर्बादी की है उसकी भरपाई की जिम्मेदारी से वे मुकर नहीं सकते, वर्ना हो सकता है उसका खामियाजा उन्हें अपने देश के अंदर ही भुगतना पड़ जाये। फिलहाल तो सद्दाम की दुर्गति चल रही है जो अभी और होनी बाकी है।

अब इस बात में जरा भी संदेह की गुंजाइश नहीं रह गयी है कि सद्दाम हुसैन के सारे दावे झूठे और खोखले थे तथा उन्होंने सिर्फ अपने थोथे दंभ का बिल्कुल लचर वर्चस्व बनाये रखने की असफल कोशिश के दरम्यान इराक को युद्ध में झोंककर एक समृद्धशाली देश को बर्बादी के कगार पर पहुंचा दिया। कहां गयी सद्दाम की जहरीली गैसें और स्कड मिसाइलें और अमरीकी सेना से दो-दो हाथ करने को आकुल व्याकुल उनकी दस लाख तैयार फौज को अचानक क्यों सांप सूंघ गया। किस बलबूते पर फिर लड़ाई मोल ली थी और हर अमरीकी चुनौती का सामना करने का पूरे जोशो खरोस के साथ ढिंढोरा पीटते थे? क्या पहले से अमरीकी ताकत के बारे में जानकारी नहीं थी ? इसका अंदाजा तब लगा जब छके छुड़ा देने की क्षमता रखने वाले रिपब्लिकन गार्ड्स अमरीकी और बहुराष्ट्रीय सैनिकों के आगे आत्मसमर्पण करने लगे ? अगर यह सब सही है तो लानत है ऐसी सोच पर जिसने जानबूझकर एक हरे भरे देश को वीरान कर दिया। अमरीकी कमांडरों का यह विश्लेषण भी दमदार प्रतीत होता है कि सद्दाम हुसैन ने अपनी सैन्य क्षमता के बारे में झूठमूठ का बढ़ा-चढ़ाकर प्रचार किया था। अन्यथा जमीनी लड़ाई शुरू होने के सिर्फ हफ्ते भर के अंदर घुटने टेकने की नौबत नहीं आती।

अमरीकी सैनिक हमले से पहले ही अगर सद्दाम हुसैन कुवैत से अपनी सेना वापस बुला लेते तब तो उनकी भी थोड़ी शान रह जाती और वे अमरीकी पिछलगुओं को परेशान करने के लिए कोई दूसरा हथकंडा अपना सकते थे। हमले के बीच में भी अगर उन्होंने अक्लमंदी से काम लिया होता तब भी शायद रही-सही इज्जत बच जाती। आज तो सद्दाम ने इराक को जिस स्थिति में ला खड़ा किया है कि उनकी अपनी तो जो गत होनी है होगी ही, इराक को कुवैत से भी बदतर हालातों के दौर से गुजरना होगा और इराकी जनता अमरीका के सामने दया का पात्र बनकर रह जायेगी। अमरीका ने न केवल इराक को कुवैत से हट जाने को मजबूर कर दिया बल्कि उसकी अंदरूनी हालत ऐसी कर दी है कि पूरे इराक में भीषण गृहयुद्ध छिड़ा हुआ है और सद्दाम समर्थक रिपब्लिकन गार्ड्स को लोग मारने पर उतारू हैं। सद्दाम हुसैन को मुंह छिपाने की जगह नहीं मिल रही है। २३ वर्षों के दमन और उत्पीड़न से ऊबी जनता की बौखलाहट अब खुलकर सामने आ गयी है और लोग सद्दाम हुसैन तथा उनके सैनिकों के खून के प्यासे हो उठे हैं जिसमें इराक में और कुवैत में मौजूद अमरीकी फौज भी उनका साथ दे रही है। सद्दाम के लिए देश छोड़कर भागना भी कठिन हो रहा है। उनके जिगरी दोस्त चीन और सोवियत संघ ने इंकार कर दिया है। जॉर्डन के शाह हसन ने हिम्मत जुटायी है, देखें इराक के तथाकथित राजनीतिक शरण देने से बादशाह को यहां भी पनाह मिलती है या नहीं और मिलती है तो कब तक ? शायद जॉर्ज बुश उन्हें उस हालत में भी चैन से नहीं जीने दें और जब तक सद्दाम हुसैन कहीं सुरक्षित रहेंगे तब तक यह डर बना रह सकता है कि कहीं वे दुबारा सत्ता में न आ जायें जो अमरीका कतई नहीं चाहता। इसके लिए अमरीका ने बड़ी सफाई से चाल चली है जो अगर वाकई कामयाब हो गयी तो सांप भी मर जायेगा और लाठी भी नहीं टूटेगी। इराकी जनता ने सद्दाम के खिलाफ खुला विद्रोह छेड़ दिया है और अमरीका उस आग को हवा दे रहा है ताकि सद्दाम अपने आप आग की लपेट में आ जायें और अमरीका पर कोई आंच न आने पाये। इराकी जनता में आम चर्चा का विषय यह है कि सद्दाम हुसैन ने बार-बार देश को युद्ध में घसीटकर निर्दोष जनता के खून से अपनी महात्वाकांक्षा की पूर्ति की। आठ साल चले ईरान-इराक युद्ध में भी इराक को कुछ नहीं मिला और अमरीका से युद्ध के बाद तो इतनी खस्ता हालत हो चुकी है कि इराक को पुनः पहले की स्थिति आने में वर्षों लगेंगे।

इस युद्ध ने एशिया में ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व में नये सिरे से अमरीका की चौधराहट कायम कर दी और संयुक्तराष्ट्र संघ की तो वो ऐसी की तैसी हुई है कि अब किसी भी देश को कोई भी अंतर्राष्ट्रीय मसला सुलझाने के लिए संयुक्तराष्ट्र का दरवाजा खटखटाने से बेहतर अमरीका की शरण में जाना होगा। हालांकि पहले भी एकाध ऐसे अवसर आये हैं जिनसे जाहिर हो गया है कि संयुक्तराष्ट्र में अमरीका की तूती चलती है और उन देशों की भी अमरीका के आगे एक नहीं चल पाती जो उससे टक्कर लेने की क्षमता रखते हैं, लेकिन खाड़ी युद्ध में यह बात जग़ा और खुलकर सामने आ गयी। कुवैत पर कब्जा करना इराक का गलत कदम था, इसमें दो राय नहीं लेकिन इस युद्ध में अमरीकी बोलती और अन्य बड़े देशों की चुप्पी ने कई सवालात खड़े किये हैं। इससे एक तो यह जाहिर होता है कि सुरक्षा परिषद के पांचों स्थायी सदस्यों में आपस में अलिखित 'अंडरस्टैंडिंग' है कि एक देश किसी छोटे या कमजोर देश के साथ चाहे जैसा भी सुलूक करे और उसके लिए सुरक्षा परिषद को ढाल के रूप में इस्तेमाल करना चाहे तो दूसरा देश उसका विरोध न करे। अमरीका जितनी हिम्मत भी किसी में नहीं है कि अपने मित्र देशों की खातिर 'वीटो' तक का इस्तेमाल करने में हिचकिचाहट महसूस न करे। इसराइल द्वारा १९६७ के अरब-इसराइल युद्ध में अरब देशों की जमीन पर कब्जा कर लेना भी इराक जैसा ही कदम था लेकिन इसराइल से दोस्ती होने के कारण फिलस्तीनी मसले पर इसराइल के खिलाफ पारित प्रस्ताव को दो-दो बार 'वीटो' करके अमरीका ने साबित करके दिखा दिया कि उसके लिए संयुक्तराष्ट्र से ज्यादा महत्व अपनी दोस्ती रखती है। अमरीका का एक रूप यह है दूसरी ओर वह फिलस्तीनियों के प्रति हमदर्दी जताता है और उनका मसला शीघ्र सुलझाने की बात करता है जबकि अमरीकी रज़ामंदी से ही फिलस्तीनी जमीन पर इसराइल का कब्जा बरकरार है। खाड़ी मसले को फिलस्तीनी मामले से सद्दाम हुसैन ने जोड़कर जॉर्ज बुश का गुस्सा और बढ़ा दिया। जो मसला पिछले २४ साल से जानबूझकर सुलझने नहीं दिया जा रहा है उसके प्रति झूठी हमदर्दी दिखावा सिवाये फिलस्तीनियों को बेवकूफ बनाने के और हो क्या सकता है। चूंकि फिलस्तीनी मुक्ति संगठन के अध्यक्ष यासेर अराफात ने युद्ध में सद्दाम हुसैन का साथ देने का वायदा किया था क्योंकि सद्दाम फिलस्तीनी मुद्दे का ढाल के रूप में इस्तेमाल कर रहे थे और यासेर अराफात को थोड़ी उम्मीद बंध गयी थी। अब कुवैत भी उनके खिलाफ हो गया है।

सुरक्षा परिषद के पांचों सदस्यों में से तीन (फ्रांस, ब्रिटेन और अमरीका) तो एक ही खेमे के रहे हैं, इसलिए उनकी तो आपस में पुश्तैनी सहमति रहती आयी है। बच रहते हैं चीन और सोवियत संघ। चीन हमेशा से बिल्कुल अलग-थलग रहा है लेकिन तब भी अमरीका के खिलाफ उसने कभी आवाज नहीं उठायी क्योंकि पेइचिंग के हुक्मरानों ने जब तिब्बत और ताइवान में ज्यादती की तो अमरीका ने कोई आपत्ति नहीं की। सोवियत संघ तो फिलहाल इस स्थिति में है ही नहीं कि अमरीका का खुलकर विरोध कर सके, क्योंकि अमरीका के खिलाफ बनाया गया उसका मोर्चा छिन्न-भिन्न हो चुका है और देश की आर्थिक हालत इतनी दयनीय हो चली है कि जिससे प्रतिद्वंद्विता थी उसी के सामने झोली फैलानी पड़ रही है। यहां तक कि देश की एकता और अखंडता भी खतरे में है, देर है तो बस स्वायत्तता की मांग के लिए खूनी क्रांति पर उतारू बाल्टिक प्रांतों को चोरी छिपे अमरीकी मदद मिलने की। सोवियत संघ ने भी पांचवें दशक में हंगरी और चेकोस्लोवाकिया में कम्युनिस्ट व्यवस्था के खिलाफ हुए विद्रोह को दबाने के लिए अपनी सेना भेजी थी लेकिन अमरीका की तरह संयुक्तराष्ट्र की आड़ में अपनी मनमौजी करने की या तो किसी और देश की क्षमता नहीं है अथवा वे देश इतनी नीचता पर उतरना नहीं चाहते।

यह बात तो सही है कि सैनिक और आर्थिक दृष्टि से संसार का सबसे सबल देश अमरीका है तथा जो देश हर मामले में उसके समान है वो कभी अमरीका के किसी कदम का विरोध कर नहीं सकता और वो देश है ब्रिटेन, जिसके स्वार्थ अमरीका से टकराने की आज तक कभी नौबत नहीं आयी और शायद आयेगी भी नहीं। खाड़ी में सैन्य क्षमता के मामले में अमरीका के बाद संख्या में दूसरा नम्बर ब्रिटेन का था। इसका मतलब तो यही हुआ कि २१वीं सदी की दुनिया में भी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था का ढांचा कमोवेश वैसा ही है जैसा प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध के समय था। कोई भी ताकतवर देश अपने से कमजोर देश पर अपनी इच्छा थोप सकता है। ऐसी स्थिति में तो लीग ऑफ नेशन्स में और संयुक्तराष्ट्र में कोई फर्क लगता ही नहीं, लीबिया के राष्ट्रपति कर्नल मुअम्मार कज्जाफी की यह उक्ति गलत नहीं लगती। इससे तो सीधे संयुक्तराष्ट्र महासचिव जेवियर पेरेज द कुइयार के औचित्य पर प्रश्नचिह्न लग गया है। अगर यह वास्तव में स्वतंत्र और निष्पक्ष संगठन है तो अमरीका द्वारा अपने स्वार्थ के लिए बुलायी गयी बंद कमरों की बैठकों के दौरान जनाब कुइयार साहब क्या कर रहे थे ? जब सोवियत संघ ने शांति की पहल की और बात कुछ रास्ते पर आ भी गयी उस समय उनकी चुप्पी के क्या माने ? अमरीका को वे कुछ दिन और रोक नहीं सकते थे जिसने शांति प्रस्ताव को साफ ठुकरा दिया और अगर वे अमरीका को कुछ कहने की स्थिति में नहीं थे तो फिर उन्हें अपने पद से इस्तीफा दे देना चाहिए। इराक से युद्ध विराम की शर्तें मनवा लेने तक तो बात जंचती है लेकिन इन तमाम शर्तों के कार्यान्वयन न होने की स्थिति में पुनः हमले का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखकर अमरीका ने अत्यंत ही घृणित मानसिकता का परिचय दिया है और इससे लगता है अमरीकी तथा बहुराष्ट्रीय सैनिक भागती हुई लाशों पर भी गोली चलाने का शौक रखते हैं। मौजूदा हालात यही बात कहती है।

इस युद्ध के लिए इराकी जनता नहीं सद्दाम हुसैन दोषी है, इसलिए इसकी सजा सद्दाम हुसैन को दी जानी चाहिए और अमरीकी शासकों में अगर थोड़ी भी नैतिकता और इन्सानियत बची है तो उनके लिए उचित होगा कि दुबारा इराक पर कहर ढाने की जुर्रत न करें। खाड़ी में शांति कायम रखने का सबसे बेहतर उपाय यही होगा कि येन-केन-प्रकारेण सद्दाम हुसैन को अपदस्थ किया जाये जिस आदमी की जिद ने वहां की जनता की भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया। जिन डेढ़ लाख इराकी सैनिकों ने समय से अपनी औकात महसूस कर अमरीकी सैनिकों के सामने आत्मसमर्पण करके युद्धबंदी बनना स्वीकार कर लिया, आज सद्दाम हुसैन और उनके चन्द विश्वासपात्र रिपब्लिकन गार्ड्स कमांडर उन्हें स्वदेश वापस लेने को तैयार नहीं है। सद्दाम हुसैन के मुताबिक वे सैनिक कायर हैं और कायरों के लिए उनके देश में कोई स्थान नहीं है। सद्दाम हुसैन की पिपासा शायद तब शांत होती जब वे सारे सैनिक अपने तानाशह राष्ट्रपति की शान बरकरार रखने के लिए जान गंवा देते। सारा इराक उबल रहा है जो उस देश को और भी गर्त में मिलाने के लिए काफी है। उसी में फिर कोई शक्तिशाली आदमी शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लेगा और धीरे-धीरे सद्दाम जैसा ही क्रूर तानाशाह बनने का इंतजाम लगाता चला जायेगा। अमरीका को दुबारा हमले करने की शायद ही जरूरत पड़े। जब तक इराक में ऐसी व्यवस्था कायम नहीं हो जाती जिसमें सरकार में जनता की भी भागीदारी हो, तब तक इराक की स्थिति में सुधार नहीं हो सकता। हमलों के दौरान सद्दाम हुसैन तो स्वयं भूमिगत बंकरों में छिपे रहे और उनके द्वारा आमंत्रित बहुराष्ट्रीय टैंक और बमवर्षक आम जनता को रौंदते रहे। अभी भी सद्दाम तो अपनी जान बचाने के लिए कहीं और जा छिपेंगे, मरेंगे वो जिन्होंने उनका साथ दिया। वैसे शासक से उस देश के साथ किये जाने वाले सुलूक के बारे में क्या बात करना जिसे अपने देश की जनता के लिए दिल में कोई दर्द न हो।

शशिधर खां